❀ श्रीमते रामानन्दाय नमः ❀

* श्रीसीतातत्त्व मीमांसा *

लेखकः—

स्वामी श्रीसीतारामशरणजी

महाराज

Scanned by CamScanner

॥ श्रीमते रामानन्दाय नमः

श्रीसीतातत्त्व मीमांसा

लेखकः—

स्वामी श्रीसीतारामशरणजी
महाराज

पुस्तक प्राप्ति स्थान

लक्ष्मणकिला, अयोध्या।

प्रथमावृत्ति] श्रीजानकी नवमी [सम्वत २०१६ वि०

श्रीहनुमत प्रेस, श्री अयोध्या जी।

सर्वाधिकार सुरक्षित

Scanned by CamScanner

दार्शनिक सार्वभौम स्वामी श्रीवासुदेवाचार्य महाराज की मङ्गल कामना।

—::❈::—

जीव अनादि-अविद्या सञ्चित पुण्य-पापों के अनु देव-मनुष्य-तिर्यग् आदि योनियों में जन्म ग्रहण करता है तथा उन योनियों में गर्भजन्म बाल्य, यौवन, जरा, मरण आदि अवस्थाओं में विविध दुःखोंका उपभोग करता रहता है।

इस प्रकार असह्य दुःखों से पीड़ित जीव पर करुणा-वरुणालय उस परम प्रभु का आकस्मिक कृपाकटाक्षभाजन बनने का जिन्हें सौभाग्य प्राप्त होता है वे ही प्राकृत षट् इन्द्रिय, षट् बुद्धि, षट् विषय, शरीर सुख दुःख रूप एक विंशति (इक्कीस) दुःखों की निवृत्ति पूर्वक परमानन्द स्वरूप भगवत्प्राप्ति के लिए अध्यात्म ज्ञान में प्रवृत्त होते हैं। श्रीवेदव्यास-जीने कहा है :—

जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः।
सात्विकः स तु विज्ञेयः स वै मोक्षार्थ चिन्तकः ॥

अर्थात् जन्म के समय में जिस जीव पर भगवान् की कृपा होती है वे ही सात्विक बनकर भजन कर सकते हैं।

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय। रसो वै सः। रसंह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। आदि श्रुतियों से रस स्वरूप परमात्मा की उपासना से ही परमानन्द की प्राप्ति कही गई है।

Scanned by CamScanner

"कारणन्तु ध्येय." अथर्ववेद के इस मंत्र के अनुसार जगत् जन्म स्थितिलय आदि के जो कारण हैं उसी की उपासना कही गई है।

जगज्जन्मादि कारणभूत परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीसीतापति भगवान् श्रीराम हैं, सद्-ब्रह्म-आत्मा-नर-महाविष्णु-महापुरुष हरिनारायण आदि नामों से वेद शास्त्रों में श्रीराम का ही वर्णन है सभी नामों के वाच्य श्रीराम ही हैं। इस अर्थ का निर्णय वेदावतार वाल्मीकीय रामायण से किया गया है। महर्षि श्रीवाल्मीकि ने देवर्षि नारद से बड़े गम्भीर शब्दों में पूछा कि निखिल कल्याणगुणगणनिलय परब्रह्म परमात्मा नर शब्द वाच्य कौन है, आप ऐसे नर को जानने में समर्थ हैं महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधं नरम्। श्रीनारदजीने श्री-राम को ही नर शब्द वाच्य कहा 'रामो नाम जनैःश्रुतः'।

सर्वेश्वर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम की प्राप्ति का मुख्य साधन है शरणागति। प्रपत्ति में जगज्जननी श्रीजानकीजी पुरुषकार रूप हैं।

प्रपत्ति के अनुरूप पुरुषकारत्व-शरणागत रक्षकत्व तदुपयुक्त सौशील्य वात्सल्य आदि दिव्यगुणों की पूर्णता श्री-सीता जी में है। अतएव श्री महर्षि जी ने लिखा है—

कृत्स्नं रामायणं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्।

समस्त रामायण काव्य श्रीसीताजी का महान् चरित्र है।

श्रीलक्ष्मणकिलाधीश पं० श्रीसीतारामशरण जी व्यास महोदय ने श्रीसीतातत्वभीमांसा नामक ग्रन्थ में श्रीसीतातत्त्व का विशद विवेचना किया है।

वेद, पुराण, इतिहास, रहस्य ग्रन्थों के साथ ही श्रीमद्-वालमीकीय रामायण का हृदय का प्रकाश किया है। मेरी ऐसी दृढ़ धारणा है कि इस ग्रन्थ से भावुक भक्तों का बहुत बड़ा उपकार होगा, कठिन विषय सरलता से समझ में आयेगा। श्रीवाल्मीकीय रामायण का रसास्वादन भी प्रस्तुत ग्रन्थ से हो सकेगा। श्रीसीतातत्त्व मीमांसा को देखकर हमें बहुत सन्तोष हुआ है आशा है अन्य विद्वानों को भी सन्तोष होगा।

इत्येवं मङ्गलमाशास्ते—

अध्ययोध्यं दार्शनिकाश्रमस्थः

स्वामि वासुदेवाचार्यः

Scanned by CamScanner

❀ श्रीमते रामानन्दाय नमः ❀

❀ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❀

श्रीसीतातत्त्व मीमांसा।

विदितवेदितव्य महानुभावों से यह तिरोहित नहीं है कि निखिलजगदुदयविभवलयलीलाशालि, अनन्त अचिन्त्यसौन्दर्य-माधुर्यसुधासागर श्रीराघवेन्द्र की प्राप्ति ही जीवमात्र का चरम लक्ष्य है। अनन्तरस प्राप्त किये बिना जीव कृतकृत्य नहीं हो सकता। अनन्तरसमय प्रभु ही हैं वेद कहता है—

रसो वै सः। रसं ह्येवायंलब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।

सत्, चित्, आनन्द ये तीन वैभवों से युक्त सच्चिदानन्द ब्रह्म कहलाता है। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'। 'आनन्दं ब्रह्मेतिव्यजानात्' इत्यादि श्रुतियां प्रमाणभूत हैं। 'आनन्दमयोऽभ्यासात्' इस सूत्र से निरतिशय निरवधिक अखण्ड एकरस आनन्द-परब्रह्म में ही श्रीवेदव्यासने स्वीकार किया है। यद्यपि सभी दार्शनिकगण अपने २ दर्शनों द्वारा मानव को परमानन्द ही प्राप्त कराना चाहते हैं किन्तु समग्र परमानन्द का विकास केवल वेदान्त दर्शन में ही सम्भव है। कोई दार्शनिक सद्वैभव में ही निमग्न हैं, कोई २ चिद्वैभव तक पहुंच

Scanned by CamScanner

कर कृतकृत्य हो गये हैं। वेदान्त दर्शन सच्चिदानन्द ब्रह्म में पर्यवसित होता है। 'स्थूलारुन्धतीन्याय' से षड्दर्शनों का समन्वय इस प्रकार से है कि जैसे नवविवाहिता बालिका को आचार्य अरुन्धती तारा दिखलाते समय प्रथम स्थूल तारा को अरुन्धती बतलाकर बालिका की दृष्टि उस पर स्थिर करते हैं पश्चात् स्थूलतारा से दृष्टि हटाकर सूक्ष्म तारा को अरुन्धती बतलाकर उस पर दृष्टि स्थापित करते हैं तत्पश्चात् सूक्ष्म से दृष्टि हटाकर अति सूक्ष्म वास्तविक अरुन्धती तारा में दृष्टि स्थापित करते हैं और कहते हैं कि यही अरुन्धती तारा है। इसी प्रक्रिया को 'स्थूलारुन्धतीन्याय' कहते हैं। इसी प्रकार स्थूल बुद्धि वालों को शरीर, मन, बुद्धि आदि को क्रमशः परमानन्द का आश्रय बतलाते हुए पश्चात् सूक्ष्म आत्मा को परमान्द का आश्रय वेद बतलाता है। जब इतनी पैनी बुद्धि हो जाती है तब सूक्ष्म आत्मा से सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमात्मा को परमानन्द का आश्रय वेद बतलाता है, यथा—

तस्माद् वा एतस्माद् आत्मनः आकाशः सम्भूतः
आकाशाद् वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः
पृथ्वी पृथिव्याः ओषधयः ओषधिभ्योऽन्नं अन्नात् पुरुषः
स वा एष पुरुषोऽन्नरसमय एव ॥

अर्थात् परमात्मा से आकाश उत्पन्न हुआ आकाश से वायु, वायु से अग्नि अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियां, औषधियों से अन्न, अन्न के विकार शरीर में स्थूल

बुद्धि को स्थापित करके क्रमशः सूक्ष्म बुद्धि की ओर श्रुति अग्रसर करती है। पुनः 'तस्माद् वा एतस्माद् अन्नरसमयात् अन्योऽन्यतर आत्मा प्राणमयः तस्माद् वा एतस्माद् प्राणमयात् अन्योऽन्यतर आत्मा मनोमयः। इसी प्रकार मनोमयात् से विज्ञानमयः विज्ञानमयात् से आनन्दमयः तक आत्माकी परम्परा आती है। वैष्णव सिद्धान्त के अनुसार विज्ञानमय का अर्थ जं वात्मा है बुद्धि नहीं क्योंकि 'विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि च तनुते' इस श्रुति से विज्ञान को क्रियाश्रय सूचित किया गया है। 'आनन्दमय' का अर्थ परमात्मा है। श्रुतियों का तात्पर्य निरतिशय आनन्दमय परमात्मा में ही है शरीर, इन्द्रिय एवं आत्मा तक क्रमशः बुद्धि को सूक्ष्म तत्व में सन्निवेश करते हुए अन्त में सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमानन्दकंद भगवान् में वेदने स्थापित किया। इसी तरह से सभी दर्शनों का तात्पर्य वेदान्त दर्शन में है तथा वेदान्त दर्शन का पर्यवसान केवल आत्मज्ञान में नहीं है किन्तु परमात्मा के साक्षात्कार में है। अचिद् वैभव से विलक्षण स्वयं प्रकाश आनन्द स्वरूप चिद् वैभव अत्यन्त ही सुखद है किन्तु अनन्त अचिन्त्य ज्ञानानन्दमय निरवधिक रसस्वरूप ईश्वरवैभव चिद् वैभव से अत्यन्त उत्कृष्ट, विलक्षण एवं परम सुखराशि है। ब्रह्मसूत्र के आनन्दमय अधिकरण में श्रीवेदव्यासने इस विषय पर पर्याप्त विवेचन किया है अब सच्चिदानन्द ब्रह्मपर किञ्चित् विचार करते हैं—

सत्, चित्, आनन्द ये तीन वैभव ब्रह्म के हैं, 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म का यही अर्थ है कि यह ब्रह्म चिद् अचिद्

दोनों से विलक्षण है। निरूपाधिक सत्तायुक्त एवं रूपान्तर नामान्तर न धारण करने के कारण ही ब्रह्म को सत्य कहा जाता है। इससे प्रकृति से एवं प्रकृति युक्त जीव से ब्रह्म की विलक्षणता कही गई क्योंकि अनेक रूप अनेक नाम धारण करने वाले प्रधान तथा मायायुक्त जीव दोनों हैं। माया का तो स्वरूप में ही परिणाम स्पष्ट है जैसे कि शरीर, मकान आदि के जन्म, वृद्धि, ह्रास, नाश आदि परिणाम प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। 'अस्ति जायते वर्द्धते विपरिणमते अपक्षीयते नश्यति' यह छः परिणाम अचिद् के माने जाते हैं।

जीवात्मा के स्वरूप में परिणाम नहीं होता किन्तु ज्ञान में परिणाम होता है। धर्मभूतज्ञान का संकोच विकाश होना ही ज्ञान का परिणाम होना है। इन दोनों दोषों से रहित होने के कारण ब्रह्म को सत्य कहा जाता क्योंकि ब्रह्म का न तो स्वरूप में परिणाम है और न धर्मभूत ज्ञान में ही परिणाम है।

'ज्ञानम्' ज्ञान का अर्थ है नित्य, असंकुचित, एकरस ज्ञानयुक्त। ज्ञानगुण सार होने से ब्रह्म ज्ञानस्वरूप कहलाता है। इससे मुक्त जीवों से विलक्षणता सूचित होती है क्योंकि मुक्त-जीव मुक्ति के पूर्व संकुचित ज्ञान वाले थे।

'अनन्त' देश, काल, वस्तु परिच्छेद से जो रहित होता है उसीको अनन्त कहते हैं। इस देश में नहीं है यह देश का परिच्छेद हुआ सर्वत्र व्याप्त होने से ब्रह्म के विषय में ऐसा देशका परिच्छेद नहीं हो सकता। इस समय में नहीं है ऐसा काल-परिच्छेद से ब्रह्म रहित है क्योंकि ब्रह्म की सत्ता सभी समय

Scanned by CamScanner

में नित्य है। अमुक वस्तु में ब्रह्म नहीं है ऐसा वस्तु परिच्छेद भी नहीं होता क्योंकि ब्रह्म सर्वात्मक है, सभी वस्तुओं में सत्ता निर्वाहक रूपसे प्रविष्ट है अतः ब्रह्मको अनन्त कहा जाता है।

आनन्द का अर्थ है अपरिमित, अनन्त आनन्द रूप ब्रह्म है 'आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्' रसोवै सः आदि श्रुतिओं से तथा आनन्दमयोऽभ्यासात' इस सूत्र से प्रचुर आनन्द पर-ब्रह्म में ही है केवल आत्मानुभव में सीमित आनन्द है यही वेदान्त का विशुद्ध सिद्ध सिद्धान्त है। इसी वेदान्त रसके लिए 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' से 'अनावृत्तिशब्दात्' पर्यन्त वेदान्त विचार है।

अब यह विचार करना है कि जीवका स्वरूपतः अधिकार क्या है, अर्थात् सत् चित्-आनन्द में से अधिक प्रिय जीवको क्या है, यह पूर्व में विचार किया गया है कि सच्चिदानन्द के अंश होने के कारण जीव को तीनों वैभव चाहिए किन्तु अब विशेष विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि सत्-चित्-प्राप्ति के पश्चात् भी आनन्द के बिना जीव कृतार्थ नहीं होगा, 'अजामेकां लोहित कृष्णशुक्लां' इस श्रुति के आधार पर सत् को प्रधान मानकर विचार करने वाले सांख्यवादी दार्शनिक महानुभाव भले ही प्रकृति को जानकर सन्तुष्ट हो जायँ एवं 'चित्' को प्रधान मानकर कैवल्यस्थिति निष्ठ योगदर्शन के अनुयायी दार्शनिक महानुभाव चिद् वैभव को प्राप्त होकर तृप्त हो जायँ किन्तु नित्यनिरवधिक आनन्द के जिज्ञासु

दार्शनिक तो परमानन्द को प्राप्त करने पर ही कृतकृत्य होते हैं। प्रकृति जड़ है आनन्द का आवरक (ढाँकने वाला) है, अतः चेतन जीव की मैत्री अचेतन-प्रकृति से नहीं हो सकती, बद्धावस्था में भी जीव को सदा अनन्त सुख की चाह बनी रहती है। अतः अचिद् विसजातीय प्रत्यगात्मा दार्शनिकों के मध्य में विदित है। चेतन होने से जीवात्मा को स्वरूपतः 'चिद्राज्य' में अधिकार है, अर्थात् साधक जीव षट्-सम्पत्ति सम्पन्न होकर 'कैवल्य मुक्ति' प्राप्त कर सकता है। किन्तु आनन्द की प्राप्ति तो आह्लादिनी की कृपा के विना असम्भव है। अतः आह्लादिनीसार, श्रीरामबल्लभा के विषय में अब यत्किञ्चित् विचार करते हैं।

अनन्त-अचिन्त्य-सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्य सुधासिन्धु श्रीराघवेन्द्र की प्राण-वल्लभा, विदेहवंश-वैजयन्ती श्रीमिथिलेशराजनन्दिनी के नित्यनिरवधिक असंख्येय दिव्यकल्याण गुणों का स्मरण करके आश्रितों का हृदय भर आता है परमानन्दरस की प्राप्ति करने वाले प्रेमरसरसिकों के लिये तो श्रीमैथिली के श्रीचरणारविन्दों का आश्रयण ही एकमात्र बल है, एकमात्र गति है। श्रीजनकराजनन्दिनी की परमबलवती, भगवती, भास्वती, अनुकम्पा से ही जीव पुष्ट होकर भगवद्रस का रसास्वादन कर सकता है।

श्रीजी की कृपा से ही यह समस्त चराचर विश्व सृष्टि के रूप में विकसित होकर अनन्त उदय को प्राप्त है।

Scanned by CamScanner

श्रीयामुनाचार्य कहते हैं कि—किञ्चित् आपके करुणा-कटाक्ष रूपी अमृत के सिञ्चन से चराचर विश्व रक्षित है, इसके पूर्व इस कृपा के अभाव में समस्त विश्व नष्टप्राय था। श्रीजी में कोप का सर्वथा अभाव है, अतः कृपा की धारा से त्रिभुवन उल्लसित होता है तथा करुणा प्रवाह के अभाव में नष्ट हो जाता है । उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं में 'संहार' का अर्थ कृपा के अभाव में ही संहार जानना चाहिये । कोप से संहार अन्यत्र है श्री जी में नहीं । ये तो अन्य को भी कोप करने से रोकती हैं श्रीहनुमान् जी से कहा है—'राज्य संश्रयवश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया। विधेयानां च दासीनां कः कुप्येत् वानरोत्तम'। अर्थात् राक्षसराज रावण के वश में होकर इन राक्षसियों ने यह सब स्वरूप विशुद्ध आचरण किया है। हे वानरोत्तम ! ऐसे पराधीन जीवों पर कोई कैसे कोप कर सकता है ? इत्यादि कथन कोपाभाव में प्रमाण है। इन्द्र ने भी कहा है 'त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयं विनष्टप्रायमभवत्त्वयेदानीं समेधितम्' हे देवि आपसे परित्यक्त होने पर समस्त तीनों भुवन विनष्ट प्रायः हो गया किन्तु आपने इस समय सारे लोकों को बढ़ा दिया है-सम्यक् विकसित कर दिया है। काश्यप ने भी कहा है- 'ब्रह्माद्याश्च सुराः सर्वे मुनयश्चतपोधनाः एधन्ते त्वत्पदच्छायामाश्रित्य कमलेश्वरि'। हे कमलेश्वरि ? ब्रह्मादिक समस्त देवता, तपोधन मुनि समुदाय आपके पादारविन्द की शीतल छाया में ही शान्ति पूर्वक बढ़ते रहते हैं।

अ ंकण संहिता में भी आठों लोकपालों को श्रीजी की पूजा में निरत होना एवं श्री जी के अधीन सबका वैभव कहा गया है। रासपंचाध्यायी में कहा है 'यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्य-सुरप्रयासः' अर्थात् श्री जी मुझ पर कटाक्ष करें ऐसा प्रयास देवगण करते रहते हैं 'जासु कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितव न सोय' मानस में स्पष्ट है। राजीवलोचन प्राणवल्लभा के प्रसाद के बिना सांसारिक वैभव, कैवल्य मुक्ति एवं परमपद इन तीनों वैभवों में से जीवमात्र के लिये किसी भी प्रकार के कल्याण की प्राप्ति नितान्त असम्भव है। सांसारिक वैभव की अपेक्षा आत्मलाभ अर्थात् कैवल्यमुक्ति अत्यन्त उत्कृष्ट है एवं कैवल्यमुक्ति की अपेक्षा परमपद अनन्त रसपूर्ण होने से परम उत्कृष्ट है। अतः इन्ही तीनों वैभवों के अभ्यन्तर प्राणीमात्र के लक्ष्य निहित रहते हैं। उपर्युक्त भावों का समावेश प्रस्तुत श्लोक में श्रीयामुनाचार्य ने किया है—

ईषत्त्वत्करुणानिरीक्षणसुधासन्धुक्षणाद्रक्ष्यते
नष्टं प्राक्तदलाभतस्त्रिभुवनं सम्प्रत्यनन्तोदयम्।
श्रेयो नह्यरविन्दलोचनमनःकान्ता प्रसादादृते॥
संसृत्यक्षर वैष्णवाध्वसु नृणां संभाव्यते कर्हिचित्

ब्रह्म पुराण में ब्रह्मा का ऐश्वर्य श्री जी के अधीन कहा गया है। यथा—

पद्मयोनिरिदं प्राप्य पठन् स्तोत्रं ततः क्रमाद्।
दिव्यं चाष्टगुणैश्वर्यं त्वत्प्रसादाच्च लब्धवान्॥

ब्रह्मा ने इस स्तोत्र का पाठ करते हुए श्रीजी के प्रसाद से अष्ट गुण अधिक ऐश्वर्य प्राप्त किया।

विष्णु पुराण में भी श्री जी का कटाक्ष समस्त समृद्धियों का मूल कहा गया है—सः श्लाघ्यः सः गुणी-धन्यः सः कुलीनः सः बुद्धिमान्। सः शूरः स तु विक्रान्तो यं त्वं देवि निरीक्षसि। सद्यो वैगुण्य मायान्ति शीलाद्या सकलागुणाः पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे—वही श्लाघ्य है वही गुणी एवं धन्य है वही कुलीन तथा बुद्धिमान है, वही शूर और पराक्रमी है जिस पर हे देवि आपका कटाक्ष है। हे जगज्जननि ? जिस पर से आप अपना कटाक्ष हटा लेती हैं उसके शीलादि सारे सद्गुण शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

श्रीपराशर भट्ट के कथनानुसार श्रीसूक्त में तो श्री जी का वैभव प्रधान रूप से है ही पुरुष सूक्तादिकों में भी श्री जी की ही महिमा का प्रतिपादन है यथा –

अस्येशाना जगत इति ते धीमहे यां समृद्धिं।
श्रीः श्रीसूक्तं बहुमुखयते ताश्च शाखानुशाखम्।
ईष्टे कश्चिज्जगत इति यः पौरुषे सूक्त उक्त—
स्तश्च त्वत्कं पतिमधिजगा पुत्तरश्चानुवाकः॥

हे श्री जी इस जगत् के नियमन करने वाली 'अस्येशाना जगतः' इस श्रुति के द्वारा हम आपके जिस ऐश्वर्य का अध्ययन करते हैं वह वैभव एवं उससे भी अधिक श्रीसूक्त प्रतिशाखानुगत सर्वांशतः बहुत प्रकार से प्रतिपादन करता है। 'इदं हि पौरुषं सूक्तं सर्वं वेदेषु पठ्यते' यह सूक्त समस्त वेदोंमें पठितहै उसी प्रकार श्रीसूक्त भी प्रत्येक शाखा में पठित जानना चाहिये।

'हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजत प्रभाम्' आदि मंत्र श्री-सूक्त में श्रीवैभव के विषय में प्रसिद्ध हैं।

केवल उपनिषद् मात्र ही श्रीजी के वैभव का प्रतिपादन नहीं करतीं किन्तु वेद के व्याख्यान रूप इतिहासादिक भी श्रीजी के वैभव से ही प्राण धारण करते हैं। यथा—

उद्वाहुस्त्वामुपनिषदसावाह नैकां नियन्त्रीं।
श्रीमद्रामायणमपि परं प्राणिति त्वच्चरित्रे ॥
स्मर्तारोऽस्मज्जननि यतमे सेतिहासैः पुराणै-
र्निन्युर्वेदानपि च ततमे त्वन्महिम्नि प्रमाणम् ॥

हे अस्मज्जननि ! केवल उपनिषद् श्रीसूक्तादि रूप उप-निषद् ही भुजा उठाकर शपथ पूर्वक आपको जगत् की नियन्त्री-जगत् की स्वामिनी, नहीं कहतीं किन्तु श्रीमद्रामायण भी आपके चरित्र का प्रतिपादन करती हुई उत्कर्ष पूर्वक जीवित है। जितने भी स्मृतियों के प्रणेता पराशरादि हैं वे सभी इतिहास पुराणों के द्वारा वेदों को आपकी महिमा में प्रमाण मानते हैं प्रस्तुत श्लोक से समग्र रामायण श्रीसीताजी का महान् चरित्र है—

'कृत्स्नं रामायणं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्'

यह श्री महर्षि बाल्मीकि का बचन स्मरण कराया गया। श्रीमद्बाल्मीकि रामायण वेदावतार है यह प्रसिद्ध है। यथा-

'वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ॥

वेदवेद्य परमब्रह्म पुरुषोत्तम अवतीर्ण होकर जब दशरथ-नन्दन हुए तब वेद भी श्रीबाल्मीकि महर्षि के द्वारा श्रीरामायण रूप से अवतीर्ण हुआ। रामायण में स्पष्ट है कि 'वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत् प्रभुः' अर्थात् महर्षि ने वेदार्थ विस्तार के लिये लवकुश को रामायण की शिक्षा दी। ब्रह्मा का महर्षि के प्रति आशीर्वाद है कि 'न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति' इस काव्य में आपकी एक भी वाणी असत्य नहीं होगी।

श्रीरामायण को काव्य कहा गया है। सन्दर्भ तीन प्रकार के होते हैं (१) प्रभु सम्मित (२) कान्ता सम्मित एवं (३) सुहृद् सम्मित। शब्दराशि प्रधानवेद प्रभुसम्मित कहा जाताहै। अर्थ प्रधान इतिहासादि सुहृद् सम्मित कहे जाते हैं। व्यंग्य प्रधान काव्य कान्ता सम्मित कहा जाता है। कान्ता प्रधान श्रीरामायण काव्य श्रीसीताजी का महान् चरित्र कहा गया है तथा यह प्रसिद्धि भी है—

'प्रातर्द्यूत प्रसंगेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसंगतः।
रात्रौ चौर प्रसंगेन कालो गच्छति धीमताम्॥'

प्रातः द्यूतप्रसंग महाभरत से मध्याह्न स्त्री प्रसंग श्रीबाल्मीकि रामायण से एवं रात्रि चौर प्रसंग श्रीमद्भागवत के द्वारा बुद्धिमानों का समय बीतताहै इस आभाणकने भी श्रीरामायण की श्रीसीताचरित प्रधान होने से ही स्त्री प्रसंग कहा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि श्रीसीता चरित की उत्कृष्टता से श्रीराम-चरित की अपकृष्टता सिद्ध होती है। प्रत्युत् श्रीसीता चरित

Scanned by CamScanner

प्रधान होने से श्रीराम चरित की असाधारण उत्कृष्टता सिद्ध होती है, क्योंकि रामायण के आरम्भ में जब ब्रह्मा ने महर्षि बाल्मीकि को रामायण रचने की आज्ञा दी तब यह भी कहा कि श्रीराघवेन्द्रनायक मौलमणि हैं, आदि काव्य के भव्य नव्य नायक में जितने सद्‌गुण होने चाहिये वे सभी श्रीरघुनन्दन में विद्यमान् हैं, यथा—

'मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती।
रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम॥
धर्मात्मनो गुणवतो लोके रामस्य धीमतः।
वृत्तं कथय धीरस्य यथाते नारदाच्छ्रुतम्॥
रहस्यं च प्रकाशं च यद्‌वृत्तं तस्य धीमतः'।

बाल्मी० १।२।३१।३३

नायक के गुण वर्णन से ही काव्य की महत्ता एवं प्रसिद्धि होती है भोज ने कहा है कि—

'कविरल्पापि वाग्वृत्तिर्विद्युत्कर्णावतंसति।
नायको यदि वर्ण्येत लोकोत्तर गुणोत्तरः'॥

अर्थात् कवि की छोटी सी छोटी रचना विद्वानों के कर्ण-भूषण बन जाती है यदि उस रचना में लोक विलक्षण गुण-सम्पन्न नायक का वर्णन हो। मुख्यतः नायक के गुण इस प्रकार कहे गये हैं—'महाकुलीनतौज्ज्वल्यं महाभाग्यमुदारता। तेजस्विता विदग्धत्वं धार्मिकत्वादयोऽपि च' (भू० टी०) महा-

Scanned by CamScanner

कुलीनता, उज्ज्वलता, महाभाग्यशालिता, उदारता, तेजस्विता, एवं धार्मिकता आदि नायकके उत्तम गुण हैं। पूर्वोक्त श्लोकों में यह समस्त गुण विद्यमान हैं 'धर्मात्मनः' शब्द से धार्मिकता कही गई। 'लोके गुणवतः' शब्द से उदारता कही गई। 'रामस्य' इससे तेजस्विता, उज्ज्वलता। 'धीमतः' शब्द से विदग्धता। 'धीरस्य' से वसुन्धरा धुरन्धर स्वरूप महाभाग्य-शालिता कही गई। 'गुण' शब्द से अन्य नायकों चितगुणों का संग्रह है। आगे चलकर ब्रह्मा ने कहा है 'कुरुरामकथां पुण्यां श्लोक वद्धां मनोरमाम्' इस श्लोक से गद्य प्रबन्ध हर्षचरित जातीय, मिश्र प्रबंध नाटकादि से विलक्षणता कही गई। उत्तर कांड में स्पष्ट कहा गया है।

आदि काव्यमिदं राम त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
नह्यन्योऽर्हति काव्यानां यशोभाग्राघवादृते' ॥

अर्थात् हे श्रीरामजी! समस्त आदि काव्य आपही में प्रतिष्ठित है। आपके सिवा काब्यों का यशोभागी दूसरा नहीं हो सकता, इत्यादि प्रमाणों से श्रीरामचरित की परमोत्कृष्टता रामायण भर में देदीप्यमान है -

एक श्लोक परम मनोहर श्रीसीतारामजी की एकता के लिये सुन्दर कांड में कहा गया है, 'तुल्यशीलवयो वृत्तां तुल्या-भिजनलक्षणां, राघवोऽर्हति वैदेहीं तञ्चेयमसितेक्षणा'। श्रीहनु-मान्जी कहते हैं शील, अवस्था, चरित, कुल आदि समस्त सद्गुण श्रीमैथिली के तथा राघव के समान ही हैं अतः

वैदेही के योग्य राघव हैं एवं राघव के योग्य वैदेही हैं। और भी अन्य श्लोक हैं—

'अस्याः देव्या यथारुपमङ्गप्रत्यङ्ग सौष्ठवं।
रामस्य च यथा रूपं तस्येयमसितेक्षणा॥
अस्याः देव्या मनस्तस्मिन् तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम्।
तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपिजीवति' ॥

श्रीहनुमान्जी श्रीमैथिली को देखकर इस प्रकार विचार कर रहे हैं—श्रीमैथिली के जिस प्रकार रूप एवं अङ्ग प्रत्यंग का सौष्ठव है उसी प्रकार श्रीरघुनन्दन का भी रूप सौन्दर्य है। श्रीरघुनन्दन का मन श्रीमैथिली में है, तथा श्रीमैथिली का मन श्रीरघुनन्दन में है इसीसे दोनों प्राण धारण कर रहे हैं। श्रीराम प्राणवल्लभा श्रीमैथिली का नाम तथा श्रीजानकी प्राणवल्लभ श्रीरघुनन्दन का नाम रसिकभक्त समाज में प्रसिद्ध है। अतः श्रीसीताराम तत्वतः अभिन्न हैं पूर्वोक्त प्रमाणानुसार यद्यपि श्रीसीतारामजी परस्पर अभिन्न हैं तथापि पूर्वाचार्यों ने रसास्वादन एवं भावनाकी दृष्टि से श्रीजी में कृपा दया मृदुता आदि का आधिक्य माना है। श्रीरघुनन्दन की अपेक्षा श्रीमैथिली में करुणा की अधिकता सर्वत्र प्रसिद्ध है। अतएव श्रीसीता चरित का विशेषण महर्षि ने 'महत्' दिया है; पराशर भट्ट दोनों को तुल्य मानकर किञ्चित् विलक्षण भेदका रसास्वादन करते हैं—

युवत्वादौ तुल्येऽप्यपरवशता शत्रुशमन-
स्थिरत्वादीन्कृत्वा भगवति गुणान्पुंस्त्वसुलभान् ।
त्वयि स्त्रीत्वैकान्तान्मृदिम पतिपाराार्थ्यकरुणा--
क्षमादीन्वा भोक्तुं भवति युवयोरात्मनि भिदा ॥

हे श्रीजी! यौवन आदि गुण आप दोनों में समान रहने पर भी पुरुषत्व के अनुरूप स्वतंत्रता शत्रु निवर्तकत्व (शत्रु-निवारण) स्थिरत्व आदि गुण प्रभु में हैं और आप में स्त्रीत्व के अनुरूप मृदु हृदय पतिपारतन्त्र्य, कारुण्य, क्षमादिक गुण प्रधानतः आप में है। इस प्रकार आप में तथा प्रभु में गुण भेदों का अनुसंधान करके तत्त्ववेत्ता लोग भेद सिद्ध करते हैं। यद्यपि मृदुहृदय, कारुण्य, क्षमादि गुण भगवान् में भी समान हैं किन्तु स्वातन्त्र्यादि के साथ हैं। श्रीजी में तो स्वातन्त्र्यादि के अभाव होने से विशुद्ध करुणा, क्षमादि पूर्णतया विकसित हैं। इसलिए श्रीसीता चरित का विशेषण 'महत्' दिया गया है। पूर्व में श्रीसीता चरित की उत्कृष्टता से श्रीरामचरित की महत्ता कही गई, क्योंकि श्रीरामभद्र ने श्रीलवकुश के मुख से इस चरित का श्रवण किया है यथा—

'इमौ मुनी पार्थिवलक्षणान्वितौ कुशी लवौ चैव महातपस्विनौ, ममापि तद्भूतिकरं प्रवक्ष्यते महानुभावं चरितं निबोधत ।'

श्रीरघुनन्दनने भ्राताओं से चरित श्रवण के लिए आग्रह

किया तथा यह भी कहा कि जो चरित मुनिवेषधारी महात-पस्वी श्रीलवकुश सुना रहे हैं यह चरित तो महान् प्रभावों से युक्त है तथा मेरे जीवन के लिए परम धारक है। इस चरित के श्रवण से मेरे जीवन में महान् रस का संचार हो रहा है। श्रीरघुनन्दन श्रीमैथिली के विरह में संतप्त थे अतः प्रियाकथा-मृत इनके लिए जीवन धारक हुआ। जिस प्रकार विश्लेष अवस्था में नायक के लिये उनकी प्रेयसी की कथा जीवनधारक होती है उसी प्रकार प्रेयसी के लिए भी विश्लेषावस्था में प्रिय-तम का मधुर चरित प्राण धारक होता है। सुन्दर कांड में श्रीहनुमंतलालजी के द्वारा प्रियतम के गुणों का श्रवण कर श्रीमैथिली विरह तापमुक्त हुईं। सर्व प्रथम श्रीहनुमान्‌जी ने रामगुणवर्णन किया। यथा—

'एवं वहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महाकपिः।
संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह ॥'

इस प्रकार बहुत प्रकार की चिन्ता करके श्रीहनुमान्‌जी ने श्रीवैदेही के श्रवण में अत्यंत मधुर भगवद् गुणों का वर्णन आरम्भ किया, 'राजा-दशरथोनाम रथकुञ्जर वाजिमान्' से १६ श्लोक पर्यन्त गुणों का वर्णन किया। गुणों के श्रवण करते ही श्रीमैथिली परम प्रसन्न हुईं।

'निशम्य सीता वचनं कपेश्च दिशश्च सर्वाः
प्रदिशश्चवीक्ष्य। स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम
सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती ॥'

इत्यादि श्रीहनुमंतलालजी से श्रीमैथिली ने कहा यदि श्रीराघवेन्द्र के तुम दूत हो तो प्रिय राम कथा सुनाओ।

'यदि रामस्य दूतस्त्वमागतो भद्रमस्तु ते। पृच्छामि त्वां हरिश्रेष्ठ प्रिया रामकथा हि मे। गुणान्रामस्यकथय प्रियस्य मम वानर। चित्तं हरसि मे सौम्य नदीकूलं यथा रयः'॥

इत्यादि। मानस में तो स्पष्ट ही है।

'रामचन्द्र गुन बरनै लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा

अब विचारणीय विषय यह है कि यदि श्रीरामायण को 'श्रीसीताचरित' नहीं स्वीकार किया जाय तो श्रीरामचरित की अत्यन्त उत्कृष्टता नहीं सिद्ध होती क्योंकि श्रीरामजी धीरोदात्त नायक हैं। धीरोदात्त का लक्षण है 'कृपावान् अविकत्थनः' परम कृपालु तथा अपनी प्रशंसा सुनने में संकुचित होना। यदि श्रीरामचरित प्रधान श्रीरामायण होती तो श्रीरामभद्र के लिये उसका श्रवण नितान्त उपयुक्त नहीं होता न तो भ्राताओं से इस प्रकार कथन ही उपयुक्त होता कि मुनिवेषधारी लवकुश जो चरित सुना रहे हैं यह मेरे प्राणधारक हैं तथा महाप्रभाव से युक्त हैं। अतः आप सब भी आदर पूर्वक श्रवण करें। यहां पर 'ममापितद्भूतिकरं प्रवक्ष्यते महानुभावं चरितं निबोधत' इस श्लोक में चरित का विशेषण 'महानुभाव' श्रीराघवेन्द्र ने दिया है यह चरित महान् प्रभाव से युक्त है ऐसा कहा है तथा "ममापि" तद्भूतिकरं" विशेषण भी दिया है अर्थात् मेरे भी प्राणधारक हैं। श्रीरघुनन्दन अपने चरित के ऐसे विशेषण

नहीं दे सकते। सीताचरित प्रधान रामायण मानने पर तो उपर्युक्त विशेषण अत्यन्त सार्थक हैं। प्रिया विश्लेष के अवसर पर प्रिया का गुणगान श्रवण रसिकशेखर नायक श्रीरघुनन्दन के लिये उपयुक्त ही है तथा सीताचरित के लिये 'महानुभाव' विशेषण भी बद्ध मुक्त सभी चेतनों पर अहेतुकी कृपा प्रदान करने के कारण सार्थक है। अब 'सीतायाश्चरितं महत्' में तथा 'महानुभावं चरितं निबोधत' में आए हुए 'महत्' एवं 'महानुभाव' विशेषणों का रसास्वादन किया जाता है। सभी अवतारों में श्रीरघुनन्दन के गुण लोकोत्तर स्वीकार किए गए हैं जिनके गुणों के रसास्वादन से अतृप्त हृदय परमविज्ञानी भक्तकुल चूड़ामणि श्रीहनुमान्जीने साकेत सुखका परित्याग कर दिया। पञ्चस्तवीकार ने क्या ही सुन्दर कहा है—

'तादृग्गुणो ननु बभूविथ राघवत्वे यस्तावकं चरित-मन्वहमन्वभुङ्क्त। सोऽत्रैव हन्त हनुमान् परमां विमुक्तिं बुद्ध्यावधूय चरितं तव सेवतेऽसौ।'

हे नाथ श्रीराघव के रूप में अवतीर्ण होकर आपने ऐसे लोकोत्तर आकर्षक चित्तापहारक गुणों का विस्तार किया जिन गुणों से आकृष्ट हो कर श्रीहनुमान्जी साकेत सुखका परित्याग कर अद्यावधि आपके चरित का ही सेवन कर रहे हैं। उत्तरकाण्ड में स्पष्ट है कि श्रीहनुमान्जीने श्रीरामजी से चरित श्रवण के लिये वरदान मांग लिया है तथा प्रभु से यह भी कहा कि जबतक आपके चरित भूतल पर विद्यमान रहें तबतक मेरे

Scanned by CamScanner

शरीर में प्राण बने रहें अर्थात् चरित श्रवण के लिए चिरजीवी होने का बर प्राप्त कर लिया। श्रीरघुनन्दन ने ऐसा ही वरदान दिया।

'यच्चैतच्चरितं दिव्यं कथाञ्च रघुनन्दन।
तन्ममाप्सरसो नित्यं श्रावयेयुर्नरर्षभः ॥
तच्छ्रुत्वाहं ततो वीर तवचर्यामृतं प्रभो।
उत्कण्ठां तां हरिष्यामि मेघलेखामिवानिलः'

इस प्रकार श्रीराघवेन्द्र में अनन्त कल्याण गुणगण हैं। सभी गुण आश्रितों के लिये रसनीय है, किन्तु शरणागत वत्सलता तो एकमात्र श्रीरघुनन्दन में हो है क्योंकि विभीषण शरणागति के प्रसंग में सुग्रीवादि मंत्रियों के विरोध करने पर भी शरणागत श्रीविभीषण को स्वीकार किया, मंत्रियों से कहा

'मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषो यद्यपि तस्य स्याद् सतामेतदगर्हितम्।'

अर्थात् विभीषण महाबिश्वास पूर्वक मेरी शरण में आया है मैं इसको परित्याग कभी भी नहीं कर सकता यदि विभीषण में दोष भी हो तो सन्तों के यहां दोषयुक्त शरणागत का संग्रह निन्दनीय नहीं है किन्तु श्लाघ्य है।

इसी स्थल पर शरणागतवत्सलने यह श्लोक भी श्रीमुख से कहा है जो कि आश्रितों का जीवन सर्वस्व है तथा श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का चरम मंत्र है यथा –

Scanned by CamScanner

करने वाली, आज्ञा भंग करने पर दंड पाने वाली इन रावण की दासियों पर भला कौन कोप कर सकता है अर्थात् कोई भी सत्पुरुष इन पराधीन राक्षसियों पर कोप नहीं कर सकता। आपतो वानरोत्तम हैं अर्थात् सुग्रीव की शरणागति कराने से यश पा चुके हैं एवं विभीषण शरणागति में सभी वानरों के विरोध करने पर भी विभीषण को स्वीकार करने को स्वामी से आपने अनुरोध किया इसलिए मैं आपको वानरों में उत्तम समझती हूँ।

श्रीजनकनन्दिनी के इस कथन का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार इन राक्षसियों ने रावण के परवश होकर अपराध किया अतएव इस अपराध की भागिनी यह नहीं अपितु रावण है, रावण के मरने पर अब मुझको नहीं कष्ट दे रही हैं? अतः सच्चिदानन्द भगवान् के अंशभूत सभी चेतन स्वरूपतः सच्चिदानन्द रूप हैं किन्तु माया के परवश होने पर एवं माया के कार्य मोहादि से ग्रस्त होकर प्रभु की आज्ञा उल्लंघन रूप अपराध करते हैं। यदि प्रभु कृपा से मोह रूपी रावण का वध हो जाय तो कोई जीव कभी अपराध नहीं कर सकता, अतः सारा का सारा दोष माया का एवं माया के कार्यभूत राग द्वेष शोक मोहादि माया परिवारों का है। जीव माया परवश होकर यदि प्रभु का अपराध करता हो तो मायातीत भगवद् रस रसिक आप सदृश महापुरुष को इन बद्ध जीवों पर कृपा करनी चाहिए न कि कोप करें तभी वानरोत्तम (वानर राज) आपका नाम सार्थक होगा।

Scanned by CamScanner

विभीषण शरणागति में श्रीरामजी ने कपोत का दृष्टान्त देकर शरणागत के संरक्षण पर बल दिया उसी प्रकार श्रीजनकनन्दिनीने ऋक्षकी गाथा कहकर शरणागत वत्सलता प्रकट की—

अयं व्याघ्र समीपे तु पुराणं धर्म संहितः।
ऋक्षेण गीतःश्लोको मे तन्निबोध प्लवङ्गम ॥
न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥

हे बानर श्रेष्ठ! व्याघ्र के समीप पुराण में यह गाथा ऋक्ष ने गाई है कि दूसरे के उद्देश्य से किये हुए पापों को उसके प्रति अपकार रूप पाप को महापुरुष लोग नहीं अङ्गीकार करते हैं। जो अपकार करता है उसके प्रति अपकार नहीं करके रक्षा करने के आचार का ही पालन महापुरुष किया करते हैं, क्योंकि सन्त महात्माओं का सदाचार ही अलंकार है। ऋक्ष की कथा इस प्रकार है—

पूर्वकाल में किसी जंगल में एक बाघ के खदेड़ने से एक व्याध वृक्ष पर चढ़ गया। उस वृक्ष पर ऋक्ष (भालू) निवास करता था। वृक्ष के समीप जाकर बाघ ने भालू से कहा कि तुम इस व्याध को अपने वृक्ष पर से नीचे गिरा दो क्योंकि हम लोगों का यह शत्रु है। भालू ने कहा कि मेरे निवास स्थान पर आये हुये इस व्याध को मैं नहीं गिराऊँगा ऐसा करने से शरणागति धर्म में महान् कलंक होगा। ऐसा कहकर भालू सोगया, तब बाघ ने व्याध से कहा कि तुमको मैं छोड़ दूँगा, तुम सोये हुए भालू को वृक्ष से गिरा दो। व्याध ने सोये हुए भालू को

वृक्ष पर से ढकेल दिया किन्तु पूर्व अभ्यास के बल से भालू वृक्ष की शाखा को पकड़ कर बच गया नीचे नहीं गिरा। तब बाघ ने भालू से कहा देखो कैसा यह दुष्ट व्याध है तुम्हारे साथ इसने बिश्वासघात किया अतः अब इस बिश्वासघाती व्याध को तुम नीचे ढकेल दो। इस प्रकार बार २ बाघ के कहने पर भी भालू ने व्याध को नीचे नहीं गिराया और बाघ से कहा कि मैं इस अपराधी की रक्षा करूँगा, क्योंकि शरणागति धर्म में अपराधियों की भी रक्षा की जाती है। श्रीजनकराजनन्दिनी ने इस गाथा को श्रीहनुमान्‌जी से कहकर इस अभयप्रद श्लोक के द्वारा अपना स्वभाव कहा है—

'पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवंगम।
कार्यं करुणमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति'॥

पापी हो या पुण्यात्मा हो अथवा वध के योग्य हो आर्य महापुरुष को तो ऐसे अपराधियों पर कृपा ही करनी चाहिए क्योंकि ऐसा एक भी जीव नहीं है जिसने अपराध न किया हो। कुछ न कुछ अपराध कभी न कभी सभी जीव किए हैं अतः इन अपराधी जीवों पर कृपा करने से ही कृपा का उत्कर्ष है। श्रीहनुमान्‌जी के समक्ष श्रीमैथिली के कथन का तात्पर्य यह है कि तुम्हारे विचार से यह राक्षसियां पापमय वध के योग्य हैं किन्तु मेरे विचार से तो दया के पात्र ही हैं क्योंकि मलिन के लिए ही स्नान की अपेक्षा होती है यदि ये राक्षसियां पुण्य मय होती तो इनकी रक्षा पुण्य से ही हो जाती, हमारी क्या

आवश्यकता होती। हमारे लिए तो इनके पाप ही भेंट हैं पुण्य नहीं। यदि कहो कि अपराधियों को दंड देना चाहिए यह धर्म-शास्त्र की मर्यादा लुप्त हो जायगी इस पर श्रीमैथिली का यह कथन श्रीहनुमान्जी से है कि महा अपराधी शरणागत की रक्षा करना विशेष धर्म के समक्ष सामान्य धर्म शिथिल हो जाता है। धर्मशास्त्र सामान्य जीवों के लिए हैं। शरणागत रक्षण रूप विशेष शास्त्र शरण आए हुए विशेष जीवों के लिए है, अतः दोनों धर्म अपने २ स्थल में लागू हैं। इस प्रकार श्री-हनुमान्जी से कहकर श्रीजनकराजनन्दिनीने अपराधिनी राक्ष-सियों की रक्षा की, तभी तो स्वामी श्रीपराशरभट्टने कहा है—

मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता।
काकं तञ्च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः।
सा नः सान्द्रमहागसस्सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी॥

हे माता मैथिलि! राक्षसराजपुरी लङ्का में अपने विषय में नित्य नवीन अपराध करने वाली उन राक्षसियों को बिना शरणागति किये ही उन पर रुष्ट श्रीहनुमानजी से अनेक हेतु-दर्शक वाक्यों के द्वारा रक्षा करके आपने रघुकुलभूषण श्रीराघ-वेन्द्र की सभा को अत्यन्त लघु कर दिया क्योंकि जयन्त तथा विभीषण को 'मैं आपका हूँ' इस प्रकार शरणागति करने पर श्रीराघवेन्द्रने उनकी रक्षा की। आप अपने क्षमागुण की प्रब-लता से शरणागति की अपेक्षा न करके केवल अहैतुकी कृपा

Scanned by CamScanner

से ही रक्षा करती हैं अतः आपकी अहैतुकी क्षमा हमारे सदृश महान् अपराधियों को सुखी करें।

सुन्दर काण्ड में त्रिजटाने जब श्रीराम-विजय सूचक स्वप्न का दर्शन किया तभी सभी राक्षसियों से कहा कि श्री-वैदेही से क्षमा याचना कर लो राघव के द्वारा राक्षसों को घोर भय उपस्थित हुआ है। यद्यपि हम लोगोंने श्रीवैदेही को बहुत कुछ फटकारा है किन्तु प्रणाम मात्र से श्रीमैथिली प्रसन्न होती हैं। अतः हम सब राक्षसियों के महान् भय से रक्षा के लिये प्रणतिमात्र ही पर्याप्त है किन्तु यह विचार राक्षसियों का स्व-गोष्ठीगत ही रह गया। राक्षसियोंने प्रणाम नहीं किया यथाः-

भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः किं विवक्षया।
राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम्॥
प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा।
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात्॥

जब राक्षसियों के मुख से श्रीमैथिलीने प्रियतम-विजय सूचक स्वप्न का श्रवण किया तब अपनी ओर से ही उन राक्षसियों से कहा यदि सचमुच मेरे प्रियतम विजयी होंगे, तो तुम लोगों की रक्षा मैं सब प्रकार से करूँगी यथा—

'ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता।
अवोचद्यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः॥'

इस बचन की सार्थकता युद्ध काण्ड में हुई जो कि उप-युक्त-प्रसंग में विवेचन किया गया।

Scanned by CamScanner

कोई २ महानुभाव 'प्रणिपात प्रसन्ननाहि मैथिली जनकात्मजा' इस रामायण बचन से श्रीमैथिली की करुणा भी प्रणिपात हेतुक है ऐसा संशय करते हैं। किन्तु यह संशय अप्रमाणिक है क्योंकि त्रिजटाने अपनी बुद्धि के अनुसार ही श्रीमैथिली को 'प्रणिपातप्रसन्न, कहा है, जब त्रिजटा को स्वप्न दर्शन हुआ एवं मैथिलीके अभ्युदयकालका आगमन जान लिया तब राक्षसियों से कहा कि इनको पीड़ा मत दो इनकी शरण में चलो। रावण के मरने के बाद यह हम सबकी रक्षा करेंगी राक्षसियोंने संशय किया कि महाअपराध करने वाली हम सब की रक्षा यह कैसे करेंगी? इस शंका के समाधान में त्रिजटाने कहा कि घबड़ानेकी आवश्यकता नहीं है, श्रीमैथिली तो प्रणतिमात्र से प्रसन्न होने वाली हैं, हम सबकी रक्षा अवश्य करेंगी।

यह समाधान त्रिजटा का अपने विचार के अनुसार ही है। श्रीमैथिली का यह धर्म नहीं है इसलिए रावण का बध हो गया किन्तु जब तक राक्षसियों को यह पता नहीं चला था, तब तक राक्षसियां श्रीमैथिली को कष्ट दे रही थीं, इसलिये तो उनका अपराध 'आर्द्र अपराध' अर्थात् ताजे अपराध के नाम से विख्यात है। कुछ क्षण के बाद ही चित्रवध करने पर उद्यत हुए। श्रीहनुमान्जी से इन राक्षसियों की रक्षा की एवं अपने विषय में महान् अपराध करने वाला काकासुर जयन्त को विमुख गिरने पर श्रीरघुनन्दन के चरणारविन्द के सम्मुख कर दिया। इस प्रसंग का बिस्तार आगे पुरस्कार वैभव विवरण में करेंगे श्रीमैथिली की अहैतुकी क्षमा इन प्रमाणों से निर्विवाद

सिद्ध हुई। इस शंका का परिहार 'श्रीगुणसुधासार लहरीस्तोत्र' में स्वामी श्रीवीरराघवाचार्यने इस प्रकार किया है—

तव क्षान्ति भट्टारकगुरुरवादीत्तवनुता
वकस्मादुद्भूतामिह जननि केचिज्जडधियः।
प्रसन्ना हीत्युक्तेः प्रणिपतनतो मैथिलसुता
सहेतुस्सापिस्यादितिजगदुराप तमतितः ॥
स्वबुद्ध्यैव प्रोक्तं प्रणतसुमुखीति त्रिजटया
न चैतद्धर्मस्ते नलिनदलनेत्रप्रियतमे।
यदेकाक्षी प्रख्यायत वहुलहिंसानवधिक
प्रवृद्धाद्रागस्काः पवनतनयाद्रक्षितवती ॥

हे जननि! श्रीपराशरभट्ट स्वामीने 'श्रीगुणरत्नकोष' में अहैतुकी आपकी क्षमा का वर्णन किया है किन्तु कुछ जड़ बुद्धि वाले ऐसा कहते हैं कि श्रीमिथिलेशनन्दिनी भी प्रणति से प्रसन्न होती हैं। अतः सहैतुकी करुणा है विना विचारे ही ऐसा कथन हो सकता है। अपनी बुद्धि से ही त्रिजटा ने कहा है कि श्रीमैथिली प्राणिपात से प्रसन्न होती हैं। हे राजीवलोचन प्रियतमे, आपका 'प्रणिपात प्रसन्नता' यह धर्म नहीं है आप तो अहैतुकी करुणा के सागर हैं तभी तो एकाक्षी प्रभृति विख्यात हिंसा परायण ताजे अपराध करने वाली राक्षसियों की श्रीहनुमान्‌जी से रक्षा की। अतः सीताचरित का विशेषण 'महत्' नितान्त सार्थक है।

'कृत्स्नं रामायणं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्'

Scanned by CamScanner

श्रीराघवेन्द्र का हृदय चन्द्रमा से भी अनन्त गुणित शीतल है तथापि अनादि काल से विमुख होकर घोर अपराध करने वाले जीवों को देखकर जब रुष्ट हृदय से युक्त होकर कभी दण्ड देने का विचार करते हैं तब श्रीमैथिली युक्तिपूर्ण वाक्यों से जीवों के अनुकूल कर देती हैं यथा—

पितेव त्वत्प्रेयाञ्जननि परिपूर्णागसिजने
हितस्रोतो वृत्त्या भवति च कदाचित्कलुषधीः ॥
किमेतन्निर्दोषः क इह जगतीति त्वमुचितै-
रुपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि माता तदसि नः ॥

हे जननि ! आपके प्रियतम श्रीरघुनन्दन जीवों के हित की दृष्टि से कभी २ महान् अपराधों को देखने पर रुष्ट हो जाते हैं। 'कदाचित्कलुषधीः' कभी २ रुष्ट होते हैं इसका तात्पर्य यह है कि सदा जीवों के उद्धार के लिए अवतार ग्रहण, वेद-शास्त्रादि का प्रकाशन, सन्त महापुरुषों के रूपमें विशिष्ट व्यक्तियों के प्रेषण आदि द्वारा जीवों को अपने सम्मुख करने में सतत प्रयत्नशील रहते हैं किन्तु 'याचितोऽपि सदा भक्तैर्नाहितं कारयेद्धरिः' याचना करने पर भी भगवान् भक्तों का अहित नहीं करते कराते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार परिणाम में अनन्त सुख प्रदान करने के लिए तत्काल कुछ दंड देकर जीवों को विशुद्ध बनाने के लिए ही कृपालु पिता के सदृश प्रभु कभी रुष्ट होते हैं तब श्रीमैथिली भगवान् को रुष्ट देखकर प्रभु से पूछते हैं कि यह आपका कोप किस लिए है ? अर्थात् व्यर्थ है,

Scanned by CamScanner

क्योंकि समस्त दोषों का एकमात्र आश्रय इस जगत् में निर्दोष कौन है ? अर्थात् कोई भी नहीं, अतः जीव पर कोप न करके आप कृपा ही करें, एवं सर्व रक्षक, सर्वशरण्य, सर्वाराध्य, आदि अपनी वेद प्रसिद्ध विरुदावली पर ध्यान रखते हुए इस जगत् के जीवों पर कृपा ही करें। इस प्रकार अनेक अपराध क्षमापन योग्य उपायों से प्रभु के समक्ष जीव को निर्दोष सिद्ध करके आप जीवों को अपना लेती हैं इस लिये आप माता हैं। पितारूप प्रभु की हितपरता एवं माता रूप आपकी प्रियपरता सुप्रसिद्ध ही है। 'उचितैरुपायै र्विस्मार्य स्वजनयसि' उचित उपायों से भुलाकर अपनाती हैं। इस पंक्ति का रसास्वादन सिद्ध देह पूर्वाचार्योंने अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक किया है वहीं देखना चाहिये।

भगवान् अपने प्रिय भक्तों की रक्षा के लिए तथा उनके विरोधियों को नाश करने के लिए जब अवतीर्ण होते हैं तब नित्य अनपायिनी श्रीजी भी कृपा परवश अवतीर्ण होकर आश्रितों की रक्षा के लिये अनेक दुखों को सहती हैं। प्रेम परवश हृदय आचार्य इस कृपा एवं स्वतंत्रताकी भर्त्सना करते हैं-

नेतुर्नित्य सहायिनी जननि नस्त्रातुं त्वमत्रागता,
लोके त्वन्महिमावबोधवधिरे प्राप्ता विमर्दं बहु।
क्लिष्टं ग्रावसु मालतीमृदुपदं विश्लिष्य वासो वने,
जातो धिक्करुणां धिगस्तु युवयोः स्वातन्त्र्यमत्यङ्कुशम्॥

हे जननि, चराचरों के नायक प्रभु की नित्य सहचरी

होकर हम लोगों की रक्षा के लिए आपने अवतार लिया किन्तु आपकी महिमा के ज्ञान से वधिर इस लोक में आपको बहुत ही आयास सहना पड़ा। मालती कुसुम से भी अत्यन्त मृदुल आपके श्रीयुगल चरण बन यात्रा के समय पाषाणों के आघात से आहत हुए। बन में प्रियतम की बिरह वेदना भी सहनी पड़ी। यह सब आप दोनों की स्वतंत्रता एवं करुणा का ही परिणाम है अर्थात् आप दोनों स्वतंत्र हैं तथा अकारणकारुणिक हैं इसलिए आप आश्रितों के लिए महान् से महान् क्लेश सहन करते रहते हैं। इस क्लेशसे हमारा हृदय अत्यन्त पीड़ित हो रहा है। अतः आपके निरंकुश स्वातन्त्र्य एवं करुणा को हम धिक्कारते हैं जिसके कारण आप दोनों को इतने क्लेश उठाने पड़ते हैं।

इस श्लोक में निरंकुश ऐश्वर्य एवं करुणा को धिक्कार कहा गया है। अन्यत्र इन गुणों की भूरि २ प्रशंसा की गई है। भाव यह है कि श्रीयुगलकिशोर परम सुकुमार श्रीमंगलमय बिग्रह के जो सच्चे प्रेमी हैं उनका एक मात्र यही लक्ष्य है कि आराध्य देव का सौन्दर्य माधुर्य एक रस सुरक्षित रहे। प्रियतम के सुख में सुखी रहने वाले प्रेमियों का हृदय सब कुछ सहने के लिये समर्थ है किन्तु प्रियतम का अल्प से अल्प दुःख सहने में समर्थ नहीं है। इसीलिये तो पूर्वाचार्य सदा से प्रभु को मंगलाशासन करते आरहे हैं—"मंगलं कौशलेन्द्राय महनीय गुणाब्धये चक्रवर्ती तनूजाय सार्व भौमाय मंगलम्" से लेकर "मंगलाशासन परैर्मदाचार्यपुरोगमै सर्वैश्च श्वैराचार्यैः सत्कृतायास्तु मंगलम्" यह मंगलाशासन प्रसिद्ध ही

है। जहां भी कहीं प्रभु के सौन्दर्य का आकर्षण है वहां उनको अनिष्ट की शंका भी बनी रहती है जैसे श्रीमैथिली के महल से जब श्रीराघवेन्द्र पिता के पास जाने लगे तब प्रियतम के सौन्दर्य के अनिष्ट की आशंका से श्रीमैथिलीने भी श्रीरघुनन्दन का मंगलाशासन किया है।

पूर्वां दिशं बज्रधरो दक्षिणां पातु ते यमः ।
वरुणः पश्चिमामाशां धनेशस्तूत्तरां दिशम् ।
अथ सीतामनुज्ञाप्य कृतकौतुकमंगलः,
निश्चक्राम सुमन्त्रेण सह रामो निवेशनात् ॥
(बा०)

भक्त शिरोमणि श्रीभरतलाल जी का श्रीभरद्वाज के प्रति निम्नांकित कथन नितान्त प्रामाण्य हैं—

मोहि न मातु करतब कर सोचू ।
नहि दुख जिय जग जानहिं पोचू ॥
नाहिन डर बिगरइ परलोकू ।
पितहुँ मरन कर मोहि न सोचू ॥
रामलखन सिय बिनु पग पनहीं ।
करि मुनि वेष फिरहिं बन बनहीं ॥
अजिन वसन फल असन महि शयन डासि कुसपात ।
बसि तरुतर नित सहत हिम आतप वर्षा वात ॥
यहि दुख दाह दहै नित छाती ।
भूख न बासर नींद न राती ॥

Scanned by CamScanner

तथा प्रेम रस रसिका पूज्य गोपांगनाओं का कथन भी तत्सुखसुखत्वं का ज्वलन्त उदाहरण है—

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ॥
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥

श्यामसुन्दर जब रासमंडल से अन्तर्हित हो गये तब उनके विरह में गोपियों ने अनेक प्रेमालाप किये हैं जो "गोपी गीत" नाम से प्रसिद्ध है यह 'गोपी गीत' का अन्तिम श्लोक एवं 'रास पंचाध्यायी' का प्राण भी कहा जा सकता है। गोपियाँ कहती हैं –

तुम्हारे चरण कमल से भी सुकुमार हैं। उन्हें हम अपने कठोर स्तनों पर भी डरते २ बहुत धीरे रखती हैं कि कहीं उन्हें चोट न लग जाँय। उन्हीं चरणों से तुम रात्रि के समय घोर जंगल में छिपे २ भटक रहे हो। क्या कंकड़ पत्थर आदि की चोट लगनेसे उनमें पीड़ा नहीं होती? हमें तो इसकी सम्भावना मात्र से ही चक्कर आ रहा है हम अचेत होती जा रहीं है। श्रीकृष्ण! श्यामसुन्दर! प्राणनाथ! हमारा जीवन तुम्हारे लिए है हम तुम्हारे लिए जी रहीं हैं हम तुम्हारी हैं। अतः निष्कर्ष यह हुआ कि भगवत् सौन्दर्य माधुर्य से आकृष्ट होकर भक्तजन प्रभु के विषय में अनिष्ट की आशंका कर लिया करते हैं। निरंकुश ऐश्वर्य एवं अहैतुकी करुणा को धिक्कारने का तात्पर्य यही है।

Scanned by CamScanner

वेदावतार श्रीमद्बाल्मीकि रामायण में श्रीमैथिली का वैभव प्रधान रूपसे प्रकाशित है। इस प्रसंग पर पूर्व में विचार किया गया है अब श्रीमैथिली के पुरुषकारत्व पर विचार करते हैं।

पूर्वाचार्योंने पुरुषकार वैभव वर्णन करते समय कहा है कि जिस प्रकार बालक के कूप में गिरने पर माता उसके संग कूद कर बालक को निकालती है उसी प्रकार श्रीजनक-नन्दनी संसार में गिरे चेतनों को देखकर उनके भोग स्थान में स्वयं जाकर उनके दुःखों का अनुभव करती हैं तथा निरुपाधिक मातृत्व प्रयुक्त वात्सल्य गुण से प्रेरित होकर उन चेतनों को भवकूप से निकाल कर स्वामी के सम्मुख करती हैं। इस सौलभ्य एवं वात्सल्यातिरेक के कारण ही श्रीमैथिली के वैभव के स्थान पर 'कारागृहवास कर्त्र्या वैभव उच्यते' का प्रयोग किया है अर्थात् कारागार वास करने वाली श्रीमैथिली का वैभव कहते हैं। इस वाक्य से श्रीमैथिली का अपकर्ष नहीं होता है किन्तु महान् उत्कर्ष है क्योंकि कर्मपरतंत्र कारावास अपकर्ष का हेतु हो सकता है किन्तु देवकन्या, राजकन्या आदि आश्रितों का बन्धन से मुक्त करने के लिये अनुग्रह परवश स्वेच्छा से अशोकवाटिका की यात्रा की। अतः इससे महान् उत्कर्ष एवं कृपा का ही प्रकाशन हुआ। सामर्थ्य रहते हुए अपराधियों पर क्षमा का प्रयोग करना ही वास्तविक क्षमा है। श्रीमैथिली अपनी महान् शक्ति से रावण को भस्म कर सकती

थीं किन्तु ऐसा न करके क्षमा ही किया। रावण के कुत्सित बचनों को सुनकर कहा कि रावण तू भस्म किए जाने के योग्य है किन्तु श्रीरघुनन्दन की आज्ञा के विना एवं तप के पालन के कारण सामर्थ्य होते हुए भी अपने तेज से तुझको भस्म नहीं कर रही हूं।

असन्देशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्ह तेजसा॥

यद्यपि गुप्त रूप से अपनी सामर्थ्य का उपयोग अशोक वाटिका में बिराजमान हु कर श्रीहनुमन्तलाल जी के रक्षार्थ किया है। जब श्रीहनुमान जी की पूँछ में आग लगाई गई तब राक्षसियोंने श्रीमैथिली से निवेदन किया कि हे सीते लाल मुख वाला बानर जिसने तुम्हारे साथ अभी वार्ता की है उसी की पूँछ में आग लगादी गई है राक्षसियों से इस प्रकार प्राण घातक कठोर वचन सुनकर श्रीमैथिलीने शोक से संतप्त होकर अग्नि देव का स्मरण किया तथा श्रीहनुमन्तलालजी के मंगल के लिये अग्निदेव की अराधना की। अग्नि से कहा— "यदि मैंने पति की विशुद्ध सेवा की है एवं कठोर तप का अनुष्ठान किया। यदि विशुद्ध पातिव्रत धर्म का पालन ठीक २ हुआ है तो श्रीहनुमानजी के अंगमें लगी हुई अग्नि शीतल हो जायँ।

यस्त्वा कृतसंवादः सीते ताम्रमुखः कपिः।
लाङ्गूलेन प्रदीप्तेन स एव परिणीयते॥
श्रुत्वा तद्वचनं क्रूरमात्मापहरणोपमम्।

वैदेही शोक संतप्ता हुताशनमुपागमत् ॥
मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ।
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ॥
यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ।
यदि वास्त्येक पत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः ॥

श्रीमैथिली के मंगलाशासन के बाद ही श्रीहनुमन्तलालजी की पूँछ में लगी हुई आग शीतल होकर श्रीमैथिली को शुभ सन्देश देकर लंका को जलाने लगी—

ततस्तीक्ष्णार्चिरव्यग्रः प्रदक्षिण शिखोऽनलः ।
जज्वाल मृगशावाक्ष्याः शंसन्निव शुभं कपेः ॥

जब पूँछ में आग भली भाँति फैल गई तब श्रीहनुमान्‌जीने विचार किया कि इतनी बड़ी ज्वाला युक्त अग्नि मुझको क्यों नहीं जला रही है । देखने से इसकी ज्वाला वृहत् है किन्तु मुझे तनिक भी कष्ट प्रतीत नहीं होता मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी पूँछ में पाले का सम्पर्क हो रहा हो—

दह्यमाने च लाङ्गूले चिन्तयामास वानरः ।
प्रदीप्तोऽग्निरयं कस्मान्न मां दहति पर्वतः ॥
दृश्यते च महाज्वालः करोति च न मे रुजम् ।
शिशिरस्येव सम्पातो लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठितः ॥

इस प्रकार पूर्वोक्त विवेचन से यह सिद्ध हुआ कि सामर्थ्य रहते हुए भी श्रीमैथिलीने रावण को नष्ट नहीं किया

श्रीमैथिलीने तो रावण के अनुचित बातों को सुनकर उसकी मूर्खता पर खेद ही प्रकट किया है। करुणामयी श्रीमिथिलेश-राजनन्दिनी के हृदय में रावण के प्रति भी करुणा उदय हो गई। हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि यदि कोई सन्त इस दुष्ट को मिले होते तथा सदुपदेश किये होते तो अवश्य इसकी बुद्धि सुधर जाती किन्तु यह अभिमानी है सन्तों के पास जा नहीं सकता फिर वे उपदेश कैसे करेंगे? वात्सल्य के कारण श्रीमिथिलेशनन्दिनी रावण को स्वयं उपदेश करने लगीं! यथा-

इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे।
यथाहि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता॥

रावण यहाँ कोई सन्त नहीं है? यदि विभीषणादि हैं भी तो तू उनका संग नहीं करता है क्योंकि तुम्हारी बुद्धि धर्म मार्ग से अत्यन्त प्रतिकूल है। तुम्हारा आचरण अत्यन्त दूषित है। यदि तुमने सन्तों का संग किया होता तो तुम्हारी बुद्धि भी विशुद्ध हो गई होती तथा तुम्हारा आचरण पुनीत होता क्योंकि—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः॥

अर्थात् तत्वदर्शी महापुरुष जिज्ञासु को प्रणाम करने पर एवं प्रश्न सेवा करने पर ही तत्व का उपदेश करते हैं। तुझ में जिज्ञासु के गुण है नहीं फिर सन्त कैसे उपदेश करते? अच्छा मैं ही तुझको उपदेश करती हूं। ध्यान पूर्वक सुनो तथा

Scanned by CamScanner

वैदेही शोक संतप्ता हुताशनमुपागमत् ॥
मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ।
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ॥
यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः ।
यदि वास्त्येक पत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः ॥

श्रीमैथिली के मंगलाशासन के बाद ही श्रीहनुमन्तलालजी की पूँछ में लगी हुई आग शीतल होकर श्रीमैथिली को शुभ सन्देश देकर लंका को जलाने लगी—

ततस्तीक्ष्णार्चिरव्यग्रः प्रदक्षिण शिखोऽनलः ।
जज्वाल मृगशावाक्ष्याः शंसन्निव शुभं कपेः ॥

जब पूँछ में आग भली भाँति फैल गई तब श्रीहनुमान् जीने विचार किया कि इतनी बड़ी ज्वाला युक्त अग्नि मुझको क्यों नहीं जला रही है । देखने से इसकी ज्वाला वृहत् है किन्तु मुझे तनिक भी कष्ट प्रतीत नहीं होता मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी पूँछ में पाले का सम्पर्क हो रहा हो—

दह्यमाने च लाङ्गूले चिन्तयामास वानरः ।
प्रदीप्तोऽग्निरयं कस्मान्न मां दहति पर्वतः ॥
दृश्यते च महाज्वालः करोति च न मे रुजम् ।
शिशिरस्येव सम्पातो लाङ्गूलाग्रे प्रतिष्ठतः ॥

इस प्रकार पूर्वोक्त विवेचन से यह सिद्ध हुआ कि सामर्थ्य रहते हुए भी श्रीमैथिलीने रावण को नष्ट नहीं किया

Scanned by CamScanner

प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम्।
मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि॥

अर्थात् तुम शरणागत वत्सल श्रीरघुनन्दन को मनाओ, 'च' से यह सूचित करती हैं कि मैं भी तुम्हारी ओर से प्रार्थना करूँगी। तुम निष्कपट भाव से मुझको श्रीरघुनन्दन को लौटा दो।

एवं हि ते भवेत् स्वस्ति सम्प्रदाय रघूत्तमे।
अन्यथा त्वं हि कुर्वाणः वधं प्राप्स्यसि रावण॥

रावण? श्रीरघुनन्दन को मुझे सौंप देने में तुम्हारा कल्याण है अन्यथा तुम्हारा बध होगा। इत्यादि अनेकों प्रकार से रावण को समझाया इससे यह सिद्ध हुआ कि श्रीमैथिली महान् अपराधी रावण के अपराधोंको क्षमा करके श्रीरघुनन्दन के सम्मुख करना चाहती हैं। श्रीजनकनन्दिनी के पुरुषकारत्व (अगुवाई) का यह चित्ताकर्षक उदाहरण है।

पूर्वाचार्यों ने संयोग तथा वियोग दोनों अवस्थाओं में श्रीमैथिली का 'पुरुषकारत्व' स्वीकार किया है चाहे श्रीमैथिली श्रीअवध राज्य सिंहासनासीन श्रीरघुनन्दन के क्रोड़ में विराजमान हों अथवा कुश कण्टकाकीर्ण जंगलों में प्रियतम से वियुक्त होकर विद्यमान हों किन्तु प्रत्येक दशा में चेतनों को श्रीरघुनन्दन के सम्मुख किया करती हैं। पुरुषकार होते समय कृपा, 'परतन्त्रता' एवं 'अनन्यार्हत्व' यह तीन सामग्रियाँ अपेक्षित हैं। क्योंकि चेतनों को संसार में दुःखमग्न देखकर उनके दुःख को

न सहकर भगवान् के साथ इन जीवों को मिलाने का यत्न करने में सर्व प्रथम अहैतुकी कृपा की आवश्यकता है क्योंकि जीवके अपराधों को देखकर कभी रुष्ट होकर प्रभु शुद्धि के लिये दंड का विधान करने लगते हैं।

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥

अतः दण्ड विधान में उद्यत प्रभु को समझा बुझाकर चेतनों के प्रति अनुकूल कर देती हैं। स्वतन्त्र प्रभु को बस करने के लिए उनके अनुवर्तन की आवश्यकता है। जो अत्यन्त परतन्त्र होगा वही अनुवर्तन कर सकता है अतः परतन्त्रता भी अपेक्षित है। अनन्यार्हत्व का अर्थ यह है कि प्रभु श्रीजी के विषय में ऐसा विचार करते हैं कि मुझसे पृथक् किसी अन्य के योग्य न होने के कारण मेरे लाभ के लिए मेरे हित की ही बातें कहेंगी। अतः निस्संकोच भाव से प्रभु श्रीजी के अनुकूल विधान करते हैं। अतः वे तीनों गुण पुरुषकारत्व के लिए अत्यन्त अपेक्षित हैं।

प्रभु की कृपा की अपेक्षा श्रीमैथिली की कृपा इसलिए विशिष्ट है कि प्रभु निरंकुश स्वतंत्र निग्रह अनुग्रह दोनों करने वाले हैं। चेतनों के शुभाशुभ कर्मों को तौलकर टुकड़े २ करके भुगाने वाले हैं। अतः प्रभु की कृपा स्वातन्त्र्य से दबकर कभी २ विशेष दशाओं में प्रकट होती है। कृपा को दबाने वाला स्वातन्त्र्य गुण श्रीमैथिली में नहीं है। अतः इनकी कृपा सदा एकरस निस्सीम चेतनों पर बरसती रहती है। अतः

Scanned by CamScanner

श्रीमैथिली के आश्रयण करने वालों को और किसी पुरुषकार की आवश्यकता नहीं है। श्रीमैथिली की कृपा के सम्बन्ध में पूर्व पर्याप्त प्रमाण दिए गए। हितकारिता एवं अनन्यार्हत्व के बिषयों में श्रीबाल्मीकि रामायण में यत्र तत्र संकेत है।

रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राण समा हिता।
सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा॥

(मूल रामायण)

श्रीरामजी की परम प्रेयसी भार्या एक परम हितकारिणी श्रीसीताजी भी श्रीरामजी के पीछे बन की ओर चलीं जिस प्रकार रोहिणी चन्द्रमा के पीछे चली हो। इस श्लोक में हितकारिता एवं श्रीरामानुवर्तन से पारतन्त्र्य एवं अनन्यार्हत्व गुण भी संगृहीत है।

अरण्य काण्ड में जब ऋषियों ने श्रीरामजी की शरणागति की तो श्रीरामजीने राक्षसों के बध के लिए प्रतिज्ञा की, श्रीमैथिलीने श्रीरघुनन्दन से कहा कि मानव के अधःपतन के लिये तीन दोष हैं।

१—मिथ्या भाषण २—पर स्त्री की अभिलाषा तथा ३—निर्वैर पररौद्रता। इनमें असत्य भाषण एवं पर स्त्री अभिलाषा यह दो दोष तो आप में नहीं है। तीसरे का संयोग होने की सम्भावना है क्योंकि राक्षसोंने आपके साथ कोई अन्याय नहीं किया इससे उन्हें मारने में 'निर्बैर पररौद्रता' का दोष आपको लगेगा। इस पर इतिहास कह कर शस्त्र धारण

के लिये प्रभु को मना किया है। श्रीमैथिलीने श्रीरघुनन्दन से कहा कि स्नेह एवं बहुमान के कारण आपको इन शास्त्रीय सिद्धान्तों का स्मरण दिलाती हूँ शिक्षा नहीं देती हूँ।

'स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये।'

श्रीमैथिली के इस कथन का श्रीरघुनन्दनने आदर किया और कहा कि हे देवि! स्नेह के कारण मुझसे तुमने उचित हित की बात कही है। हे धर्मज्ञे जनकनन्दिनि! पवित्र निमि कुल के अनुरूप तुमने धर्म संगत बातें कही किन्तु मुनियों-ने मेरी शरणागति की है अतः उनकी रक्षा अवश्य करूँगा। शरणागत वत्सल श्रीरघुनन्दनने कहा कि मैं अपने प्राणों का परित्याग कर सकता हूँ तथा प्राणों से भी प्रियतम आपका एवं लक्ष्मण कुमार का परित्याग कर सकता हूँ किन्तु ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, तथा शरणागतों के समक्ष की गई प्रतिज्ञा का परि-त्याग कभी भी नहीं कर सकता—

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥

इससे स्पष्ट हुआ कि श्रीमैथिली श्रीरामजी का हित करने वाली हैं। अतः इनकी बातें निस्संकोच भाव से प्रभु स्वी-कार करते हैं। अनन्यार्हत्व का उदाहरण सुन्दर काण्ड में स्पष्ट है—

अनन्यदेवत्व मियं क्षमा च भूमौ च शय्या नियमश्च धर्मे।

श्रीमैथिली पश्चात्ताप करती हैं कि मैंने श्रीरामजी को छोड़कर अन्य किसी देवता का स्मरण नहीं किया। श्रीरघुनन्दनने तो सामान्य धर्म की शिक्षा देने के लिए कभी २ राजकुमार भाव से किसी २ देवता का पूजन आदि किया भी है किन्तु श्रीमैथिलीने श्रीरामजी को छोड़ कर दूसरे को देवता माना ही नहीं। राज्याभिषेक के समय श्रीरामजीने अपने कुल-देव भगवान् श्रीरङ्ग की पूजा की साथ में श्रीमैथिली भी थी किन्तु इनका मन तो अपने देवता श्रीरघुनन्दन में ही लगा हुआ था। अपने विशाल नेत्रों से प्रियतम छबि मकरंद का ही पान कर रही थीं। इसलिए महर्षिने लिखा—

'सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत् ।'

यहां पर श्रीरामजी के पूजन के समय अप्रधान रूप से श्रीमैथिली का रहना सूचित किया गया है क्योंकि 'अप्रधान' में ही 'तृतीया विभक्ति' होती है। पुरुषकारत्व के योग्य पूर्वोक्त तीनों गुणों की सिद्धि स्पष्ट हुई।

पूर्वाचार्योंने तीन विश्लेष के द्वारा तीन विशेष गुणों का प्रकाशन स्वीकार किया है। प्रथम विश्लेष से कृपा का प्रकाशन किया गया है। रावण के गृह में देवाङ्गनाओं के वन्धन छुड़ाने के लिये स्वयं अशोक वाटिका की यात्रा, अपनी ओर से क्रूर राक्षसियों को क्षमा प्रदान, एवं श्रीहनुमान्‌जी से उनकी रक्षा आदि का प्रसंग कृपा प्रदर्शन के उदाहरण हैं। इसका पूर्ण विवेचन पूर्व प्रसंग में हो चुका है।

Scanned by CamScanner

द्वितीय विश्लेष से परतन्त्रता का प्रकाशन किया गया है। जब श्रीराघवेन्द्र रावण बध के पश्चात् राज्य सिंहासनासीन हुये तो श्रीवैदेहि से श्रीरघुनन्दनने पूछा है—

अपत्यलाभो वैदेहि ममायं समुपस्थितः।
किमिच्छसि सकामा त्वं ब्रूहि सर्वं बरानने॥

हे वैदेहि ! मेरे पुत्र लाभ का यह समय उपस्थित हुआ है इस समय तुम क्या चाहती हो कहो तुम्हारा मनोरथ मैं पूर्ण करूँगा। श्रीमैथिलीने कहा—

तपोबनानि पुण्यानि दृष्टुमिच्छामि राघव।
गंगातीरनिविष्टानि ऋषीणां पुण्यकर्मणाम्॥
फलमूलाशिनां बीर पादमूलेषु बर्तितुम्।
एष मे परमः कामो यन्मूलफल भोजिषु॥
अप्येकरात्रं काकुत्स्थ वसेयं पुण्यकीर्तिषु॥

हे रघुनन्दन ! गंगा के तीर में स्थित पुण्य तपोबन एवं पुण्यात्मा ऋषियों के आश्रम को देखना चाहती हूँ। कम से कम एक रात्रि भी मुनियों के आश्रम में रहकर उनकी सेवा करना चाहती हूँ यही मेरा सर्वश्रेष्ठ मनोरथ है। इस प्रकार श्रीराघवेन्द्रने श्रीलक्ष्मणकुमार के द्वारा श्रीमैथिली को तपोबन भेज दिया। जब श्रीमैथिली को यह ज्ञान हुआ कि लोकापवाद से भयभीत होकर प्रभुने मेरा परित्याग किया है तब उन्होंने प्रियतमकी रुचि के अनुकूल ही रहना स्वीकार किया एवं श्रीलक्ष्मणकुमार से इस प्रकार कहा—

Scanned by CamScanner

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीजले।
त्यजेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मे परिहास्यते ॥

हे लक्ष्मण ! यदि मैं अपने जीवन को जाह्नवी जल में त्याग कर दूँ तो रघुवंश की यह सन्तान मेरे स्वामी को प्राप्त नहीं होगी।

इससे यह सूचित हुआ कि अतिशय विश्लेष दुःख के कारण मरण अपेक्षित होने पर भी प्रियतम के परतंत्र होने के कारण ऐसा नहीं कर सकीं।

तृतीय विश्लेष से 'अनन्यार्हत्व' का प्रकाशन किया गया है। श्रीबाल्मीकि महर्षि के आश्रम से लौटकर प्रियतम के समीप में ही जन्म-गृह (पृथ्वी) में प्रवेश करना।

'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।'
'अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा ॥'

इन दोनों की पारस्परिक अनन्यता है जैसे सूर्य से प्रभा पृथक् नहीं हो सकती उसी प्रकार श्रीसीतारामजी का परस्पर में वियोग नहीं हो सकता। जब लोकापवाद के भय से श्रीरघुनन्दनने श्रीमैथिली से कुछ परीक्षा देने का अनुरोध किया तब श्रीमैथिलीने श्रीरघुनन्दन की अनन्यता सिद्ध करने के लिये अपनी जन्मभूमि में प्रवेश किया—

यथाऽहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥

Scanned by CamScanner

घबड़ा गये और श्रीमैथिली के पुरुषकारत्व में ही उन्होंने श्री-रघुनन्दन के चरणों को पकड़ लिया।

स भ्रातुश्चरणौ गाढ़ं निपीड्य रघुनन्दनः।
सीतामुवाचातियशा राघवं च महाव्रतम्॥

अति यशस्वी श्रीलक्ष्मणकुमार भ्राता के चरणों को पकड़ कर श्रीमैथिली एवं महाव्रती श्रीराघव से बोले—

कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते।
कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्पते॥

हे नाथ मुझको अपना अनुचर बनालें इसमें कोई वैधर्म्य नहीं है अर्थात् माता-पिता, गुरु सेवा आदि सामान्य धर्म के अनुष्ठान का फल आपकी प्राप्ति ही है। अतः सामान्य धर्म का परित्याग होने से अधर्म की आशंका नहीं है प्रत्युत उन धर्मों की सार्थकता है। आप जब स्वीकार कर लेंगे तभी मैं कृतार्थ हो सकूँगा, आपका भी अर्थ सिद्ध होगा। अपने भोग्यरूप प्रिय चेतनों की प्राप्ति से भगवान् का अर्थ सिद्ध होता है। श्रीसीतारामजी के नित्य कैङ्कर्य की प्राप्ति ही शरणागति का फल है। परम धर्म के ज्ञाता श्रीलक्ष्मणकुमारने स्वामी से नित्य कैंकर्य की प्राप्ति की ही प्रार्थना की है—

भवांस्तु सह वैदेह्या गिरि सानुषु रंस्यते।
अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते॥

श्रीराघवेन्द्र से श्रीलक्ष्मणकुमारने कहा कि आप तो

Scanned by CamScanner

श्रीमिथिलेशनन्दिनीजी के साथ पर्वतों के शिखरों पर विहार करेंगे और मैं आपके जागते सोते समय समस्त कैंकर्य करूँगा। सभी अवस्थाओंमें दिव्य दम्पत्तिका सर्वविधि कैंकर्य करना ही शेषभूतजीवका परमकर्त्तव्य है। भगवद् कैंकर्य में ही चेतनों का रमण स्वीकार किया गया है। इसी आशय से महर्षिने चित्रकूट में तीनों का रमण कहा—

चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात्।
रम्यमावस्थं कृत्वा रममाणा वने त्रयः॥
देवगन्धर्वसंकाशास्तत्र ते न्यवसन् सुखम्।

अन्यथा यदि युगल कैंकर्य में चेतनों का रमण नहीं माना जाय तब 'रममाणा वने त्रयः' यह पंक्ति व्यर्थ हो जायगी। इस प्रकार अयोध्याकाण्ड में श्रीलक्ष्मणकुमार की शरणागति श्रीमैथिली के पुरुषकारत्व में हुई।

इसी प्रकार पञ्चवटी में पहुँचने पर श्रीराघवेन्द्रने श्रीलक्ष्मणकुमार से कहा कि जहां-जहां स्थल की सुविधा हो वहां पर्णशाला बनाइये। जब श्रीरघुनन्दनने ऐसा कहा तो श्रीलक्ष्मणकुमार घबड़ा गए इस आशंका से कि कहीं स्वामी मुझको स्वतन्त्र समझकर परित्याग तो नहीं कर दिए ?

अतः पुनः श्रीमैथिली के पुरुषकारत्व में अनुकूल होने के लिए स्वामी से प्रार्थना की:—

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः।
सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत्॥

Scanned by CamScanner

परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद॥

(बाल्मी० ३ । १५ । ६-७)

इस प्रकार श्रीरामजी के कहने पर हाथ जोड़ कर लक्ष्मणकुमार श्रीसीताजी के समक्ष श्रीरघुनन्दन से इस प्रकार बोले—हे नाथ ! अनन्त काल तक मैं आपका परतन्त्र सेवक हूँ। अतः आप 'इस देश में पर्णशाला बनाओ', ऐसी आज्ञा दें।

असुरप्रकृति वाले जयंत ने काकरूप धारणकर श्रीजनकनन्दिनी का असह्य अपराध किया तब क्रुद्ध होकर श्रीरघुनन्दन ने उस पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया—अपने प्राणों की रक्षा के लिए जयन्त ने समस्त लोकों में चक्कर लगाया किन्तु कहीं आश्रय नहीं मिला।

स पित्रा च परित्यक्तः सुरैश्च समहर्षिभिः।
त्रीन् लोकान् सं परिक्रम्य तमेव शरणं गतः॥

(बाल्मी० ५)

पिता, माता, देवता महर्षि आदि से परित्यक्त होकर उसने तीन लोकों की कई बार परिक्रमा की किन्तु किसीने रक्षा नहीं की। अन्त में श्रीराघवेन्द्र की शरण में पहुँचा—

सः तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम्।
वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत्॥

(बाल्मी० ५)

पृथ्वी में गिरे हुए शरणागत जयन्त को देखकर वध के योग्य होने पर भी शरणागत वत्सल श्रीराघवेन्द्रने कृपा करके उसकी रक्षा की। इस श्लोक में 'कृपया' का अर्थ है कृपारूपणी श्रीजनकनन्दिनी के द्वारा रक्षा करना। पद्मपुराण में श्रीवेद-व्यासने इस उपर्युक्त अर्थ की पुष्टि की है—

पुरतः पतितं देवी धरण्यां वायसं तदा
तच्छिरः पादयोस्तस्य योजयामास जानकी ॥
प्राणसंशयमापन्नं दृष्ट्वा सीताथ वायसम् ।
त्राहि त्राहीति भर्तारमुवाच दयया विभुम् ॥
तमुत्थाप्य करेणाथ कृपापीयूष सागरः ।
ररक्ष रामो गुणवान् वायसं दययैक्षत ॥

सामने पृथ्वी पर गिरे हुए जयन्त को देखकर श्रीजनक-नन्दिनीने उसके सिर को श्रीरघुनन्दनके चरणों पर रख दिया। ब्रह्मास्त्र से उसका प्राण संकट में देखकर श्रीमैथिलीने दया पर-वश त्राहि-त्राहि कह कर उसकी रक्षा के लिये स्वामी से प्रर्थना की। तब कृपामृत के सागर शरणागतवत्सल श्रीरामजीने दया परवश जयन्त की रक्षा की। इस प्रकार जयन्त को रक्षा भी श्रीमैथिली के पुरुषकारत्व में ही हुई।

स्वामी से अलग रहने पर भी चेतनों पर कृपा की वृष्टि अनवरत होती रही। रावण के वश होकर लंका जाते समय भी अनाथ सुग्रीव को देखकर अपने भूषणों को फेंककर उनपर कृपा करती गईं। अन्यथा और किसी के समक्ष भूषण फेंक

Scanned by CamScanner

सकती थीं। किन्तु ऐसा नहीं किया अनाथ सुग्रीव को देखकर दया आ गई। श्रीरामजी के द्वारा सुग्रीव की रक्षा हो सकेगी, इस भावना से पुरुषकारत्व का निर्वाह किया। रावण को भी स्वामी के सन्मुख करने के लिये उपाय का अनुष्ठान देखा गया है। इसका एवं राक्षसियों पर की गई कृपा का विवेचन पूर्व में होचुका है।

संश्लेष-विश्लेष दोनों दशाओं में श्रीमैथिली के पुरुषकारत्व का निरूपण किया गया। अब पूर्वोक्त दोनों दशाओं में पुरुषकार के प्रकार का वर्णन करते हैं।

श्रीजी संयोग दशा में सर्वेश्वर प्रभुको वश में करती हैं तथा वियोग दशा में चेतन को वश करती हैं। ईश्वर को वश करने का अभिप्राय यह है कि चेतनों के अपराधों को देखकर जब ईश्वर क्षमा न करके दण्ड विधान का संकल्प करता है ऐसी स्थिति में दण्ड विधान को रोक कर चेतनों के अंगीकार करने को सर्वेश्वर को चेतनोन्मुख बनाना। चेतनों को वश करने का अभिप्राय यह है कि जो चेतन भगवद्विमुख होकर अनन्तकाल से भगवदाज्ञा से विरुद्ध अकृत्य करने में प्रवृत्त है ऐसे चेतनों के दोषों को दूर कर उन्हें भगवत् सम्मुख करना पुनः संश्लेष दशा में सर्वेश्वर की स्वतंत्रता को दूर कर कृपा आदि गुणों का स्मरण दिलाती हैं एवं विश्लेष दशा में चेतनों को भगवत् सम्मुखता के अवसर पर भगवत् सौन्दर्य माधुर्य लोभ दिखलाकर चेतनों को विषयोंसे विमुख कर भगवत्

सम्मुख करती हैं। 'श्री' शब्द के छः व्युत्पत्तियों में से अर्थ यहां ग्राह्य हैं। श्री 'हिंसायाम्' धातु से निष्पन्न 'श्री' शब्द का अर्थ है चेतनों के निखिल दोषों को दूर करना, श्रृ विस्तारे धातु से निष्पन्न 'श्री' शब्द का अर्थ है जगत् में भगवत् गुणों का विस्तार करना।

सर्वेश्वर चेतन दोनों को उपदेश से वश करती हैं सर्वेश्वर जब चेतनों के अपराध देखकर रुष्ट हो जाते हैं तब उनको इस प्रकार समझाती हैं—हे नाथ! यदि आप इन चेतनों के अपराधों की गणना कर इनको दण्ड देंगे तो फिर इनकी रक्षा करने वाला दूसरा कौन होगा? रक्षा की अपेक्षा से आए हुये चेतनों की रक्षा आप न करेंगे तो आपका सर्वरक्षकत्व गुण कलंकित हो जायगा। इस पर स्वामी कहते हैं कि अनादि काल से हमारी आज्ञा को न मानकर स्वतन्त्र होकर कुकर्मों में प्रवृत्त होने वाले इन चेतनों को यदि अपराध के अनुसार दण्ड न दें किन्तु अपराधो को क्षमा कर इनको अंगीकार करलें तो शास्त्र मर्यादा नष्ट हो जायगी।

प्रभु की ऐसी उक्ति सुनकर श्रीजी कह देती हैं कि चेतनों की रक्षा न कर इनके अपराधोंके अनुसार दण्ड देने पर कृपा आदि गुण कैसे सार्थक होंगे? तब प्रभु पूँछते हैं कि दण्ड न देनेसे शास्त्र की मर्यादा चली जाएगी एवं रक्षा न करनेपर कृपादि गुण व्यर्थ हो जायेंगे ऐसी द्विविधा में हम क्या करें यह आपही बताइए? तब श्रीराजकिशोरी जी उत्तर देती हैं, हे नाथ! आप तो सर्वज्ञ

सर्व समर्थ हैं इस प्रकार फिर क्यों डरते हैं। जो आपके चरणों से विमुख हैं उनके प्रति आप शास्त्र की मर्यादा का व्यवहार करें। अर्थात् जो लोग भगवान् के आश्रित नहीं हैं जिनको केवल अपने शुभ कर्मों का ही बल है, जो अपने पापों को केवल प्रायश्चित से दूर करना चाहते हैं जो ईश्वर को केवल एक न्याय कर्त्ता के रूप में स्वीकार करते हैं इनके लिये शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार शुभाशुभ कर्मों का फलदायक मात्र ईश्वर होता है किन्तु जो सभी साधनों से मुख मोड़कर केवल श्रीभगवत्पादारविन्द का आश्रय लेते हैं उनके प्रति भगवान् की कृपा ठीक उसी प्रकार होती है जैसे एक उच्च न्यायाधीश अपने प्रिय पुत्र के प्रति बर्ताव रखता है भक्तवत्सल भगवान् अपने आश्रितों के अपराधों को क्षमा कर उनको अंगीकार करते है। श्री जी भगवान्से कहती हैं कि विमुखों के प्रति शास्त्र का उपयोग करें तथा आश्रितों के प्रति कृपा आदि गुणों का उपयोग करें ऐसा करने से शास्त्र एवं कृपादि गुण दोनों सुरक्षित रहेंगे। इसके दृष्टान्त में जयन्त का उदाहरण पूर्व में दिया जा चुका है।

चेतन को वश करने में रावण के प्रति श्री जी का उपदेश पूर्व में वर्णित है इस प्रकार व्यवस्था देकर ईश्वर जीव दोनों के कर्मपारतन्त्र्य को निवृत्त कर देती है। पुण्य पाप के वश में आकृष्ट होकर भगवद्विमुख चेतनों के कर्म जनित परतन्त्रता को नष्ट कर देती हैं तथा चेतनों के कर्मों को प्रधान समझकर तदनुसार फल देने वाले सर्वेश्वर की कर्म परतन्त्रता

को भी निवृत्त करके कृपा गुण को जागृत कर चेतनों की रक्षा
कराती हैं।

चेतन अनादि काल से अविद्या के अधीन है। अविद्या
के कार्य अज्ञान के कारण स्वस्वरूप तथा भगवत्स्वरूप चेतनों
के सामने ओझल सा हो गया है। अनादि अविद्या से उत्पन्न
अज्ञान के कारण ही चेतन-कर्म परतन्त्र बना हुआ है। ईश्वर
में कर्मपरतंत्रता निरंकुश स्वतन्त्रता के कार्यभूत अपने संकल्प
से आई हुई है। इन दोनों की कर्म परतंत्रता अनादि होने पर
भी मातृत्व सम्बन्ध से चेतनों के आप्त तथा महिषीत्व (पट-
[illegible]नी के) सम्बन्ध से सर्वेश्वर के अभिमत प्रेयसी होने के
कारण श्रीमैथिली इन दोनों के हृदयों का आर्द्र करके चेतनों
को तो भगवत् आश्रयण के लिये अभिमुख करती हैं और सर्वे-
श्वर को चेतनों को अङ्गीकार करने के लिये अभिमुख करती
हैं। इस प्रकार इनके उपदेश से दोनों की कर्मपरतन्त्रता नष्ट
हो जाती है। जब दोनों उपदेश से निवृत्त नहीं होते हैं अर्थात
सर्वेश्वर दण्ड देने से जब निवृत्त नहीं होता त[illegible] वु अकृत्य
करने से निवृत्त नहीं होता तब श्रीमैथिली दोनों को वश करने
के लिये अन्तिम उपाय करती हैं। चेतन को अपनी कृपा से वश
करती हैं और सर्वेश्वर को अपने सौन्दर्य से वश में करती हैं।

Scanned by CamScanner